वीर संवत् २४९२, पोष कृष्ण ११, सोमवार
दि. १७-१-१९६६, श्लोक ३ से ६, प्रवचन नं. २

यह 'छहढाला' है। इसकी पहली ढाल की तीसरी गाथा चलती है। एक तो मांगलिक की हुई और यह तीसरी गाथा चलती है। क्या बात चलती है ? जीव अनादि से, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दुर्लभ भावना, उसकी बात चलती है।बाद मैं लेंगे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। अनन्तकाल से परिभ्रमण करते-करते, उसे इस नरकगति, तिर्यञ्चगति-निगोदगति, मनुष्यगति देवगति में भटकते हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति महादुर्लभ है, वह यह वर्णन है। स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में यह बोधिदुर्लभ भावना की व्याख्या है, भाई ! उसकी वह गाथा है।

बारह भावना है, (उसमें) बोधिदुर्लभ भावना (है।) उसकी गाथा का अर्थ लगभग उन्होंने वहाँ से लिया है। समझ में आया ? बारह भावना है न ? उसमें ग्यारहवीं बोधिदुर्लभ भावना है, दसवीं लोकभावना है। चौदह ब्रह्माण्ड है, उसमें अनन्त बार परिभ्रमण किया; फिर ग्यारहवी बोधिदुर्लभभावना है, बारहवीं धर्मभावना है। इस बोधि दुर्लभ भावना में स्वामी कार्तिकेयने इस प्रकार लिया है। उनकी शैली अनुसार इन्होंने - 'दौलतरामजी'ने हिन्दुस्तान की भाषा में रचना की है। देखो ! यहाँ आया है।

भावार्थ है। तीसरी गाथा का है न ? यह क्या बात चलती है ? इस प्रकार परिभ्रमण करते-करते सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है। भटकते-भटकते दुःख पाते हुए यह मनुष्यभव और उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति (होना) तो महा-महा अनन्तकाल में दुर्लभ है। यह बतलाने के लिए यह दुःख की व्याख्या और मिथ्यात्व का फल बताते हैं।

'**संसार में जन्म-मरण धारण करने की कथा बहुत बड़ी है।**' स्वयं कहते हैं कि भाई ! मुनियों ने सन्तोने, भगवानोंने संसार में जन्म-मरण-जन्म लेना और मरना इसके जो जन्म-

मरण धारण करने की बात तो (बडी मिलती है) '**तथापि जिस प्रकार पूर्व आचार्यो ने...**' स्वामी 'कार्तिकेय' आदि आचार्यों ने '**अपने दूसरे ग्रन्थों में कही है...**' उस प्रकार मैं भी इस ग्रन्थ में थोड़ी-सी कहूँगा। आचार्यों ने तो बहुत विस्तार से (वर्णन) किया है। स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'मे तो एक-एक का बहुत विस्तार लिया है।

'**इस जीवने नरक से भी निकृष्ट निगोद में एक इन्द्रिय जीव का शरीर धारण किया...**' देखो ! निगोद जीव, नरक से भी हलका (निम्न) है। निगोद का जीव (अर्थात्) एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उसे निगोदजीव कहते हैं। समझ में आया ? अनन्त काल नित्य निगोद में रहा, जिसमें से कभी त्रसपना प्राप्त नहीं किया, ऐसे निगोद में अनन्त बार रहा; परन्तु यहाँ ग्रन्थकार को, निगोद में से निकलेगा - ऐसी बात लेना है। भाई ! पीछे आता हे न ? '**निकसि भूमि**' - निगोद से निकलकर... '**निकसि भूमि**' आया न ? इसलिए निगोद में से निकलनेवाले की व्याख्या। नित्य पड़ा है वह तो पड़ा ही है। समझ में आया ? अभी निगोद किसे कहना ? उसकी श्रद्धा कराते हैं। उसमें कितने काल भटका और कितने दुःख सहन किये ?

निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं। उन्हें एकसाथ अनन्त का श्वास साथ ही होता है, आयुष्य साथ ही होता है, इन्द्रिय साथ (होती है) और प्राण (साथ होते हैं।) समझ में आया ? ऐसे निगोद में एकेन्द्रिय शरीर धारण करके रहा है। 'गोम्मटसार' में तो ऐसा एक लेख है कि निगोद का एक शरीर असंख्य क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम तक रहता है, उसमें निगोद का जीव जन्मता और मरता है, जन्मता और मरता है, जन्मता और मरता है। ओहो...हो...! आता है, यह बात पहले हुई है, याद है न ? ऐ...ई...! 'गोम्मटसार' में है।

एक निगोद का शरीर, हों ! इतने काल रहे उसमें एक निगोद का जीव बारम्बार मरता-जन्मता है, मरता-जन्मता है, मरता-जन्मता है, तथापि शरीर तो वह का वही रहता है। उस शरीर में इतनी बार-असंख्य... असंख्य... असंख्य... अरबों बार निगोद के अनन्त जीव जन्मते और मरते हैं। कहीं उनकी खान का पता नहीं लगता उन्हें। समझ में आया ? क्या कहा ? एक शरीर में इतने काल रहता है - यह कहेंगे, देखो !

नरक से भी हल्का निगोद काल है। '**एक इन्द्रियजीव का शरीर धारण...**' करता है।

अनन्त जीवों का शरीर एक, इन्द्रिय एक, श्वास एक, आयुष्य एक - ऐसे अनन्त जीव एक शरीर में रहते हैं, उनके दुःख की पर्याय क्या कहना ? कहते हैं जिनकी इतनी हीनदशा हो गयी है। तत्त्व के विराधक जीव, कितने तो अनादि के तत्त्व के विराधक (हैं) और कितने ही तत्त्व के विराधक होकर वहाँ - निगोद में जाते हैं, उसे इतर निगोद कहते हैं और यहाँ निगोद अनादि से आत्म तत्त्व के स्वभाव के भान बिना भाव कलंक पहुरा - भाव कलंक की प्रचुरता; प्रचुरकलंकके कारण एक शरीर में निगोद के अनन्त जीव पड़े है। उनका दुःख भगवान जाने और वे वेदन करें।वे जीव है, हों ! मिथ्या नहीं है। आलु, शक्करकन्द, हरी काई (इनकी) एक इतना टूकड़ा लो तो (उसमें) असंख्य तो शरीर है और एक शरीर में अभी तक जो सिद्ध जीव हुए, छह महीने और आठ समय में छहसौ आठजीव सिद्ध होते हैं, अभी तक के अनन्त पुद्गलपरावर्तन में सिद्ध की जो संख्या है, (उसकी अपेक्षा भी अनन्त जीव निगोद के है।) अनन्त पुद्गलपरावर्तन की जो सिद्ध की संख्या, फिर वापिस अनन्त पुद्गलपरावर्तन आया। समझ में आया ? एक पुद्गलपरावर्तन में उसके अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी होती है। ऐसा एक पुद्गल (परावर्तन), ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन, उसमें एक चौबीसी में भी छह माह और आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति होती है। ऐसे-ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन की मुक्ति की जो संख्या है, उसकी तुलना में निगोद के एक शरीर में अनन्तगुने जीव हैं। समझ में आया ?

भूतकाल की अपेक्षा उसमें कितना (काल) गया ? आहा...हा...! कितने जीव तो एक शरीर में, उसमें अनन्तबार रहा। यह सत्य होगा ? है ? दुर्लभपना बतलाते हैं, भाई ! तुझे मनुष्यपना मिलना... आगे कहते-कहते कहेंगे, उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, जो जन्म-मरण के अन्त का कारण है, वह तो महादुर्लभ है, भाई ! यह दुर्लभ सामग्री प्राप्त करके अब काल को - अवसर को मत चूकना - यह कहना चाहते हैं। कहेंगे, अभी आगे बहुत कहेंगे। समझ में आया ?

इस नरक से भी हीन निगोद का एकेन्द्रिय जीव का शरीर धारण करता है। '**साधारण वनस्पतिकाय में उत्पत होकर वहाँ अनन्त काल व्यतीत किया है।**' एक में असंख्य क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का एक शरीर, उसमें रहा फिर वह गया; ऐसे - ऐसे अनन्त के शरीर भी इसने परिवर्तन किये। समझ में आया ? कोठी में होता है न ? जैसे बड़ी कोठी होवे और एक दाना

आवे और जाए; दाना आवे और कोठी ऐसी की ऐसी रहे। इसी प्रकार निगोद का एक शरीर इतने काल तक रहता है। उसमें से अनन्त जीव जाते हैं और अनन्त आते हैं; अनन्त जाते है और अनन्त मरते हैं, अनन्त (आते है), शरीर ऐसा का ऐसा रहता है। ओ..हो..हो...! उसमें से इसे निकलना ! कहते हैं - इस प्रकार अनन्तकाल व्यतीत हुआ है। यह तीन बात हुई।

निगोदका दु:ख और वहाँ से निकलकर प्राप्तकी हुई पर्यायें

एक श्वासमें अठदस बार, जनम्यो मरयो मरयो दुखभार,
निकसि भूमि जल पावक, भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।

अन्वयार्थ :- [निगोदमें यह जीव] (एक श्वासमें) एक साँसमें (अठदस बार) अठारह बार (जनम्यो) जनमा और (मरयो) मरा [तथा] (दुखभार) दु:खों के समूह (मरयो) सहन किये [और वहाँ से] (निकसि) निकलकर (भूमि) पृथ्वीकायिक जीव, (जल) जलकायिक जीव, (पावक) अग्निकायिक जीव (भयो) हुआ तथा (पवन) वायुकायिक जीव और (प्रत्येक वनस्पति) प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव (थयो) हुआ।

भावार्थ :- निगोद [साधारण वनस्पति] में इस जीवने एक श्वासमात्र (जितने) समयमें अठारह बार जन्म* और मरण x करके भयंकर दु:ख सहन किये हैं। और वहाँ से निकलकर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवके + रूपमें उत्पन्न हुआ।।५।।

* नया शरीर धारण करना।

x वर्तमान शरीरका त्याग।

\+ निगोदसे निकलकर ऐसी पर्यायें धारण करनेका कोई निश्चित क्रम नहीं है; अन्य त्रस पर्यायें भी प्राप्त करता है।

अब, '**निगोद का दुःख...**' उसमें दुःख का वर्णन करते हैं। यह बोधिदुर्लभ भावना का वर्णन करने में 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में यह अधिकार लिया है, उसमें से इन्होंने यह लिया है। '**वहाँ से निकलकर प्राप्त पर्यायें।**'

एक श्वासमें अठदस बार, जनम्यो मरयो मरयो दुखभार,
निकसि भूमि जल पावक, भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।

'**(निगोद में यह जीव) (एक श्वास में)**' '**एक श्वास में... (अठदस बार) अठारह बार जन्मा और मरा...**' एक श्वास, आहा..हा...! यहाँ तो इसे जरा-भी प्रतिकूलता आ जाए, वहाँ शोर मचा देता है। भाई ! एक श्वास में, हों ! अठारह बार जन्मा और मरा। अठारह बार, एक श्वास में। ऐसे अनन्त बार ! एक अनन्त श्वाच्छोश्वास निगोद के शरीर में परिभ्रमण में इसने निकाले हैं। आहा..हा...! यहाँ जहाँ आया, वहाँ सिर घूम जाता है, मानो क्या करना और हमारे क्या करना और कहाँ जाना ? है ? कुछ थोड़े से पैसे होवे वहाँ ऐसा हो जाता है और बढे वहाँ तो ऐसा होजाए, जीव को हैरान कर देता है ! भाई ! है ?

यह कहते हैं - भाई ! बापू ! तेरे इतिहास की कथा लम्बी है। यह कहा न ! देखो न ! क्या कहा ? '**ये कछु कहूँ कही मुनि यथा...**' तेरी यह कथा बड़ी है, भाई ! जैसे वह बारोट आकर इसकी बात करता है या नहीं ? तेरे परिवार में ऐसे लोग हो गये हैं, ऐसे हुए थे, ऐसे हुए; अच्छा - सब कहता है वह तो। इसीप्रकार यह सर्वज्ञ भगवानने तेरी भूतकाल की कथा कही है। इस विगत काल में कितना रहा - यह भगवानने तो बहुत विस्तार से कहा है, सन्तों ने तो बहुत विस्तार से कहा है, परन्तु मैं उसमें से थोड़ी-थोड़ी बात करूँगा।

कहते हैं - एक श्वास में अठारहबार जन्मा और मरा। ऐसे अनन्त जीव एक साथ हो ! साथ ही जन्मे और मरे। उनमें इतनी भाईबन्दी होगी या नहीं ? ज़रा भी लेना या देना नहीं है। एक जीव में दूसरे जीव का अभाव; एक जीव की प्रकृति अलग, पर्याय अलग; द्रव्य-गुण अलग, उनके कर्म भी अलग सब अलग अलग है। आहा..हा...! आहा..हा...! '**जन्मा और मरा और... (दुःखभार) दुःखो का समूह...**' ओ..हो..हो...! निगोद का दुःख, उसके दुःख का क्या

कहना ? नरक का दुःख तो पंचेन्द्रिय संयोग की व्याख्या है वहाँ। इसके (निगोद के) दुःख तो मिथ्यात्व और कषाय की उग्र परिणति का दुःख है और भले ही शास्त्रकार दुःख का कथन संयोग से करते हैं, परन्तु दुःख का स्वरूप आनन्द से विपरीत मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष की उग्रता में परिणमित होना, उसका नाम दुःख है। बात तो लोग, संयोग से देखते हैं, इसलिए संयोग से बात करेंगे। यह जन्म-मरण का दुःख (कहा, वह) वास्तव में जन्म-मरण का दुःख नहीं। देखो ! बात तो यह कही, देखो ! कहते हैं न ! '**एक श्वास में अठदस बार जन्म्यो मर्यो दुःखभार...**' देखो ! जन्मा, मरा, दुःखों का समूह सहन किया। भाषा क्या है ? जन्म और मरण के दुःख का भार सहन किया। उन्हें बताना है कि भाई ! यह आत्मा जन्मे और मरे, इसमें कषाय की इतनी तीव्रता है कि बारम्बार उसमें विकार में दुःखी होकर बारम्बार परिवर्तन करता है।

जिस मनुष्य को जिसके प्रति बहुत प्रेम होता है न, वह चीज़े बहुत पलटाया करता है। समझ में आया ? बाईयों के पास पच्चीसों प्रकार की साड़ियाँ होती हैं। देखा है उनके सन्दूक में ! वे शौच के लिये जाऐ तब दूसरी (पहिने), बैठने के लिए दूसरी, सोने के लिए दूसरी, यह करे तो दूसरी... ऐसी पलटापलट - पलटापलट किया करती है। एक दिन में कितनी बार बदलती है। ये बड़े राजा होवे जोड़ा बहुत बदलते हैं, लकड़िया बहुत बदलते हैं, घर में हो तो यह (इस प्रकार) अलग-अलग (रखते हैं।) जिसके प्रति रस है उसे ऐसा करूँ.. ऐसा करूँ.. ऐसा भोगना, यों भोगना... ऐसा भोगना ! कहो भाई ! देखा है या नहीं ? बहिनों के विचार किसी दिन देखे है ? सवेरे से शाम तक कितनी साड़िया बदलती है तुम्हे ? लो ! गरीब व्यक्ति को एक होवे तो क्या बदले ? वे दस प्रकार के, पन्द्र प्रकार के पड़े हो तो बदलाबदली यह तो तुम्हारे। दो घड़ी में यह और दो घड़ी यह। इस प्रकार मानों बाई बदल गयी हो ऐसा लगे, वस्त्र बदला इसलिए। भाई !

ऐसे इसके संस्कार कहते हैं कि इस शरीर का इतना प्रेम है। चैतन्य का तो पता नहीं; रहा है एक शरीरमात्र। शरीरमात्र रहा है। उसमें इतनी एकत्वबुद्धि है। इतनी एकत्वबुद्धि है कि गुलाँट मार-मारकर एक श्वास में अठारह भव करता है। आहा..हा...! उसके एक दिन के कितने, क्या कुछ कहलाता है न एक अन्तर्मुहूर्त के ? तीन हजार सात सो अठहत्तर ! है क्या कहते हैं ?

बहत्तर ? है ? तिहत्तर ? जो आकड़ा हो वह, हाँ ! कितने ? एक अन्तर्मूहूर्तमें इतने भव करता है, लो ! आंकड़ा जो कोई हो वह। इतना प्रेम हे न ! भगवान आत्मा का प्रेम तो चला गया है। इस प्रकार बार-बार गुलाँट खाता है। एक श्वास में अठारह भव - यह भी कोई बात है ! कुछ समझ में आया ? ऐसे दुःख के समूह को जन्म-मरण की व्याख्या से आचार्य ने शास्त्र में दुःख की व्याख्या की है। वरना जन्मना-मरना तो संयोग हुआ। जन्म, (यह) संयोग और मरण, वह संयोग का वियोग, परन्तु उस समय उसे दबाव की मिथ्यात्व और कषाय की इतनी तीव्रता है कि उसके दुःख के जन्म-मरण के समय भगवान जानते है ओर वह भोगता है - इतना उसे दुःख है। समझ में आया ?

उसकी थोड़ी व्याख्या की है। उन्होंने एक बार कहा था न ? कि भाई ! निगोद के दुःख को किस प्रकार... भाईने दिया है जरा। एक मनुष्य होवे, उसके प्रत्येक अंग में मजबूत वस्त्र भर दे, फिर उसे लोहे के सरिये से बाँधे, फिर उसे एक वृक्ष पर बाँधकर टांग दे। समझे इसमें ? इस प्रकार वे वृक्ष पर पिण्ड करके बाँध दै, हाँ ! सब बन्द करके... फिर नीचे से अग्नि जलावे और सिर पर कोड़े मारे। यह तो अभी पंचेन्द्रिय की व्याख्या है, इससे तो अनन्तगुना दुःख है। यह तो एक लोगों का जरा ऐसा लगे कि ऐसा ! मुँह सिल दिया हो, फिर ऐसे चारों और कसकर, शरीर को कसकर और लोहे के धगधगाते सरियों से बाँधकर और लोहे सरिये में डालकर वृक्ष पर बाँधे और पीटे, आवाज़ कर नहीं सके, हिल सके नहीं; कुछ नहीं मात्र अकेली पीड़ा (सहन करे)। यह तो संयोग से बात की है। समझाये किस तरह ? परन्तु वस्तुतः तो उसे संयोगीभाव का दुःख है। आहा..हा...! समझ में आया ? यहाँ ज़रा चीखे वहाँ तो हाय... हाय... उसे ठीक हो गया और मुझे खराब हो गया। उसे यह हो गया, वह चढ़ गया - छोटा भाई बढ़ गया और बड़ा भाई रह गया। शूली पर चढा होगा, वहाँ क्या है ? आहा..हा...!

कहते हैं - भाई ! तेरे दुःख की व्याख्या भगवान भी पूरी नहीं कर सकते। क्या कहें ? जैसे आत्मा की अनंतता की बात का पार नहीं है, वैसे ही उसकी विपरीतदशा का वेदन, जिसे वेदन हो, उसे पता पड़ता है (या) उस वेदन को दूसरे केवली जानते है। क्या वेदन ? अपार, जहाँ सम्पूर्ण आत्मा ही जहाँ मिथ्यात्व और मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष में इतना ढंक गया है कि जिसके अक्षर के अनन्तवें भाग की पर्याय का क्षयोपशम जरा ज्ञान-दर्शन का (हो) वीर्य आवृत्त है। समझ में

आया ? ऐसी निगोद पर्याय के दुःख की दशा, कहते हैं कि मुनियोंने तो बहुत कही है, परन्तु मैं थोड़ी कहूँगा। समझ में आया ? उसमें अनन्तकाल रहता है। निगोद में अनन्त पुद्गलपरावर्तन (काल तक) रहता है। ऊपर अनन्तकाल कहा है न ? नहीं कहा उसमें ?

'**काल अनन्त निगोद मँझार...**' अनन्त पुद्गलपरावर्तन। एक बादर निगोद में व्यर्थ रहे, अकेला बादर निगोद में (रहे) तो भी सत्रह क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम (रहता है।) सूक्ष्म निगोद में रहे तो सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम तक (रहता है।) दो में फिरते-फिरते रहे तो ढाई पुद्गलपरावर्तन और एकेन्द्रिय आदि में जाकर एकेन्द्रिय निगोद, एकेन्द्रिय निगोद असंख्यात पुद्गलपरावर्तन करता है, उसे श्वास आ जाता है, परन्तु ऐसे तो अनन्त निकाले - ऐसा कहते है। यहाँ तो काल अनन्त कहा है न ? अनन्त... फिर भाषा तो क्या रखें ? आहा..हा...! अरे ! इसमें से तू मनुष्य हुआ, भाई ! ऐसा कहते है। यह बोधिदुर्लभ - सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करना और मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र का त्याग करना, यह अनन्तकालमें, यह निकलना ही दुर्लभ, उसमें यह पाना तो कितना दुर्लभ है ! समझ में आया ?

'**दुःखो के समूह सहन किये...**' लो ! '**(और वहाँ से) निकलकर...**' यह बात ली है। निगोद में से निकलकर यहाँ तो (यह) बात लेना है। जो नित्य निगोद में पड़े हैं, उनकी बात नहीं है; वे तो हैं, पड़े हैं। '**पृथ्वी कायिक जीव...**' यह तो उनकी एक शैली से बात करते हैं। शास्त्र में, 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में भी यही शैली है, भाई ! पृथ्वीकायिक आदि.. भाषा ऐसी बोली जाती है न ? बोला क्या जाता है ? पृथ्वी, अप, तेज, वायु और.. ऐसा बोला जाता है न ? पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय - इस प्रकार कथन किया है। निकलने की यही रीति है - ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया ?

कहते हैं पृथ्वी का जीव हुआ। वह जीव कैसा होगा ? यह खान की मिट्टी आती है न ? एक टूकड़े में असंख्यात शरीर है, एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। उसमें एक पृथ्वी में रहे तो सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम तक वहाँ रहता है। समझ में आया ? आहा..हा...! सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम किसे कहते हैं ? असंख्यात् अरब वर्ष। सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम। एक सागरोपम में दश क्रोड़ाक्रोड़ी प्लोयपम, एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग में असंख्यात्

अरबों वर्ष (होते हैं।) पृथ्वी में रहे तो असंख्यात अरबों वर्ष रहता है। पृथ्वी में ही निकले-ऐसा कुछ नहीं, परन्तु उसे शास्त्र की कथन की पद्धति एकेन्द्रिय की है, उस पद्धति से बात की है। पृथ्वी कायिक जीव।

जल, यह पानी... पानी एक जल की बिन्दु हैं, उसमें असंख्य जीव है। उसमें एक-एक शरीर

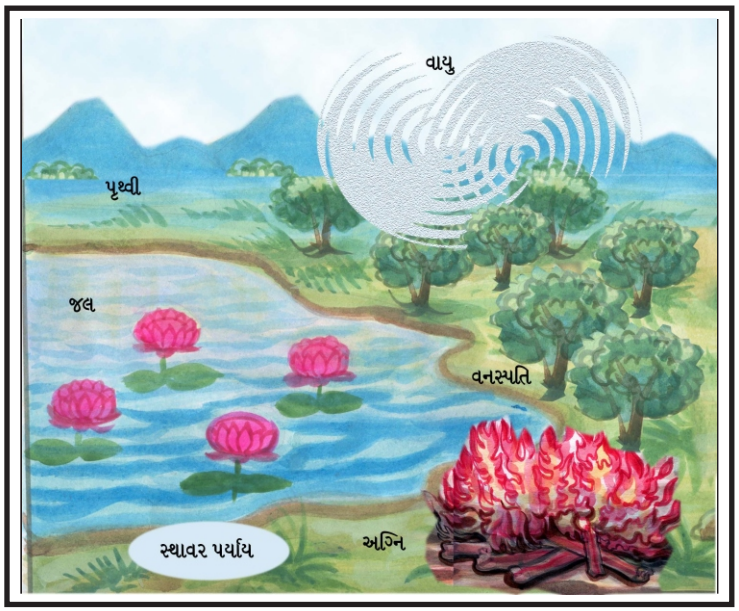

में एक-एक जीव पानी में भी ऐसा का ऐसा जन्मे और मरे तो सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम तक रहता है। वह जीव वहाँ (इस) स्थिति मे रहता है। कायस्थिति, हाँ भवस्थिति थोड़ी है। जेसे की पृथ्वीकाय का एक शरीर है, वह बाईस हजार वर्ष है, परन्तु उसी का उसी में जन्मे और मरे, जन्मे और मरे तो असंख्यात अरब वर्षों तक रहता है। पानी में एक शरीर में रहे तो कितने सात हजार वर्ष रहे ? सातहजार वर्ष एक शरीर में, हाँ ! एक ही शरीर, परन्तु जन्मे और मरे, जन्मे और मरे - असंख्यात क्रोड़ाक्रोड़ी, समझ में आया ? सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी; असंख्यात नहीं; असंख्यात अरब वर्ष, असंख्यात अरब वर्ष। कहो, उसमें से निकला और अग्नि हुआ।

अग्नि-अग्नि। यह चूल्हे की अग्नि, दियासलाई की अग्नि होती है न ? चिनगारी, यह जीव है। इतनी-सी कणी दिखायी देवे, उसमें असंख्य जीव है। एक-एक में एक-एक शरीर है। एक शरीर का एक-एक जीव है। उसमें एक में रहेतो उसकी अमुक आयुष्य (होती है।) तीन अहो रात्र ! यह सब भूल गया। और उसी का उसी में रहे तो सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम रहे। असंख्यात अरबो वर्ष तक अग्नि में ही जन्मे ओर मरे, अग्नि में जन्मे और मरे अग्नि में मरे और

जन्में...! ओ..हो...हो...! समझ में आया ? भाई ! अब तुम्हारा मनुष्यपना इतना कहाँ रहा ?

अवसर आता है न, तब यह भूल जाता है। वह दृष्टान्त नहीं आया ? नगर का एक दृष्टान्त आया था न ? मुझे गाँव में घुसना है, नगर था न नगर ? उसके चार दरवाजे थे। अब मुझे गाँव में घुसना है। मैं अन्धा हूँ। तब कहते हैं - तुझे बताने कौन आयेगा ? उसका गढ़ हो न ? उसे हाथ से छूते जाना, दरवाजा आवे तब घुस जाना; परन्तु दरवाजा आवे तब हाथ से खुजलाने लगे, इतने में दरवाजा चला जाए, फिर जहाँ दूसरा दरवाजा आवे, वहाँ पेशाब करने का मन हो; तब दरवाजा निकल जाए, गढ़ में घुसने का प्रसंग ही प्राप्त नहीं हो। इस प्रकार अवसर आवे तब मुझे कुछ यह करना है, मुझे कुछ यह करना है, मुझे धूल यह करना है।

कहते हैं अरे ! अग्निकाय का जीव...! आहा...हा...! असंख्य अरब वर्ष वहाँ (रहता है।) सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की कायस्थिति, हो !

फिर वायुकाय हुआ। पवन... पवन ! वह भी जीव है। वह वायु, उसमें भी सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम रहता है। उसके एक शरीर की आयुष्य कितनी है ? सात हजार वर्ष। एक शरीर में सात हजार वर्ष रहता है। इस प्रकार असंख्यात अरब वर्ष रहता है। उसकी वायु में रहने की कायस्थिति असंख्य अरब वर्ष ! सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम ! यह सब, यहाँ तू रहा है। कहते है भाई ! यह सब आस्था कराते हैं। यह सब था और वहाँ तू (रहा है)। भगवानने बारोट होकर यह तेरी कथा कही है, बापू ! यहाँ तू इतना भटका है, भाई ! तुझे सम्यग्दर्शन पाने के लिए महासमागम मिलना और पाना अनन्तकाल में दुर्लभ है। आगे...आगे बात करेंगे।

प्रत्येक वनस्पति निगोद में से निकला है न ? अर्थात् एक शरीर में एक जीव; यह नीम, पीपल, एक पता है, उसमें असंख्य जीव हैं। नीम के एक पत्ते में असंख्य जीव हैं। उसमें एक-एक शरीर में एक-एक जीव, उसके दुःख भी बहुत। समझ में आया ? प्रत्येक वनस्पति काय में भी सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम रहता है एक शरीर में दश हजार वर्ष कायस्थिति, मरे और जन्मे, मरे और जन्मे तो असंख्यात अरबों वर्ष (रहता है) सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी (सागरोपम) रहता है - इस नीम जैसी प्रत्येक वनस्पति में। लौकी और करेला यह सब है न ? उनमें मरे और जन्मे, मरे और जन्मे तो भी सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम (रहता है।) आहा...हा...!

सब्जी लेने गया, वहाँ चार पैसे के (एक) शेर बैंगन लिया, छोटी मूली माँग ली, छिलके के साथ था, उसमें भाई स्वयं बैठा था। मुफ्त में मूली में गया। है ? आहा...हा...! इसे पत्ता कहाँ है ? यह कितनी मूल्यवान वस्तु है ! गरीब को गुड़ मिले तो सन्तोष करता है ऐसा... ऐसा... ऐसा... इसे ऐसा मनुष्यदेह प्राप्त हुआ, उसमें क्या करने का है ? और क्या प्राप्त करने का है ? इसकी दरकार नहीं है, इसलिए उस बात की सब शुरुआत यहीं से की है, हों ! 'स्वामी कार्तिकेय'ने की है, वह बात स्वयं करते है। समझ में आया ? यह अन्वयार्थ हुआ।

'**भावार्थ :- निगोद (साधारण वनस्पति) में इस जीव ने एक श्वासमात्र (जितने) समय में अठारह बार जन्म और मरण करके भयंकर दुःख सहन किये हैं।**' यह तो निमित्त से बात की है। शरीर धारण किया और गया - ऐसे संयोग से बात करते हैं, परन्तु शरीर का संयोग होने पर उसमें इतना दुःख है और वियोग होने पर इतना दुःख है। उस दुःख की व्याख्या बतलाना है। समझ में आया ? एक अंगुली का जोर टूट जाए तो चिल्लाता है या नहीं ? तो पूरा शरीर टूट जाता है, हाय...! इतना मिथ्यात्व और कषाय का ज़ोर है न ? दुःखी... दुःखी... दुःखी... तडफता है; भयंकर दुःख सहन किये है।

'**वहाँ से निकलकर...**' देखो ! निगोद में से निकलकर, ऐसा हाँ ! वहाँ भी ऐसा पाठ है, भाई ! 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में वह अभी देखा है। उसमें ज़रा लिखा है न, इसलिए वह देखा। उनके घर का नहीं है, लोग नहीं मानते। उन्होंने घर का कुछ नहीं डाला है। सब शास्त्र के आधार सहित है, हों ! देखो !

जीवो अणंतकालं वसइ णिगोएसु आइपरिहीणो।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि।।२८४।।

शास्त्र की भाषा है, तद्नुसार कहा है। पृथ्वीकायिक होता है। पृथ्वी, अपकाय - यह शैली ली है। समझे ?

तत्थ वि असंखकालं वायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं।
चिंतामणिव्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण।।२८५।।

देखो ! अब आयेगा न ? वह उनकी भाषा है, देखो !

तिर्यंचगतिमें त्रसपर्यायकी दुर्लभता और उसका दुःख

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी;
लट पिपील अलि आदि शरीर, घर घर मरयो सही बहु पीर।।५।।

अन्वयार्थ :- (ज्यों) जिस प्रकार (चिन्तामणि) चिन्ता-मणिरत्न (दुर्लभ) कठिनाईसे (लहि) प्राप्त होता है (त्यों) उसी प्रकार (त्रसतणी) त्रसकी (पर्याय) पयार्य [भी बड़ी कठिनाई से] (लही) प्राप्त हुई। [वहाँ भी] (लट) इल्ली, (पिपील) चींटी, (अलि) भँवरा (आदि) इत्यादिके (शरीर) शरीर (घर घर) बारम्बार धारण करके (मरयो) मरण को प्राप्त हुआ [और] (बहु पीर) अत्यन्त पीड़ा (सही) सहन की।

भावार्थ :- जिस प्रकार चिन्तामणिरत्न बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है उसी प्रकार इस जीवने त्रसकी पर्याय बड़ी कठिनतासे प्राप्त की। उस त्रस पर्यायमें भी लट (इल्ली) आदि दो इन्द्रिय जीव, चींटी आदि तीन इन्द्रिय जीव और भंवरा आदि चार इन्द्रिय जीव के शरीर धार करके मरा और अनेक दुःख सहन किये।।५।।

अब, '**तिर्यंचपर्याय में त्रसपर्या की दुर्लभता...**' तिर्यंचगति में त्रसपर्याय की दुर्लभता '**और उसका दुःख।**' यहाँ तक तो बात की है निगोद के दुःख, वहाँ से निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति (हुआ)। (इसी) क्रम से होता है - ऐसा कुछ नहीं है। किसी समय होवे भी और किसी समय सीधा मनुष्य भी होता है। किसी समय पृथ्वीरूप से होता है; किसी समय निकलकर सीधे वनस्पति भी होता है, परन्तु उस शास्त्र की शैली है न, पृथ्वी जल - उस शैली से बात की है। देखो ! यह 'स्वामी कार्तिकेय' की भाषा है भाई !

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी;
लट पिपील अलि आदि शरीर, घर घर मरयो सही बहु पीर।।५।।

'**जैसे, चिन्तामणि रत्न कठिनता से प्राप्त होता है...**' देखो ! भाषा। चिन्तामणि रत्न, महापुण्य होवे और प्राणी को प्राप्त होता है। अभी लाभ-अलाभ का प्रश्न नहीं है। यह तो जैसे महापुण्य के कारण चिन्तामणिरत्न प्राप्त होता है। वह चिन्तामणि पत्थर होता है, उसकी सेवा देव करते हैं; इसलिए वह जिसे प्राप्त होता है, उसकी इच्छानुसार उसे मिलता है, पुण्य के कारण। ऐसी दुर्लभता बताकर (कहते हैं)। '**उसी प्रकार (त्रसतणी) त्रस की (पर्याय)...**' ओ...हो...! अभी तो त्रसपना, हों ! निगोद में से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति प्रत्येक (हुआ), उसमें से त्रस (हुआ) इतनी बात यहाँ करनी है। समझ में आया ? अभी यह सब तिर्यंच की बात चलती है। निगोद, वह तिर्यञ्च है न ? निगोद है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब तिर्यञ्च है। अब, कहते हैं कि उसमें से त्रसपना प्राप्त करना चिन्तामणिरत्न के समान है। अभी त्रस, हों ! दो इन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय होना। ओ..हो..हो..! समझ में आया ?

'**त्रस की (पर्याय)...**' अर्थात् शरीर '**(दुर्लभ) कठिनता से प्राप्त होती है।**' दो इन्द्रिय में से निकलकर, प्रत्येक में आना - पृथ्वी आदि में आना, उसमें से निकलकर त्रस होना, (वह जैसे) चिन्तामणिरत्न की प्राप्ति दुर्लभ है, वैसे त्रसपना प्राप्त करना दुर्लभ है। दो इन्द्रिय इल्ली (कीडा) होना दुर्लभ है। ऐसा कहते है, लो ! आहा...हा...! आचार्य 'स्वामिकार्तिकेय' स्वयं कहते है, हाँ ! उसका दृष्टान्त दिया है। अभी श्लोक पढ़ गये है न ! आहा...हा...! पहले के गृहस्थ पण्डित घर की बात नहीं करते हैं; सभी आचार्यों ने कही है, उसे संक्षेप में समेटकर जो कुछ कहने का आशय हो, वह बात करते हैं। एक भी बात घर की (कल्पना की) नहीं करते हैं; महा भवभीरूथे। समझ में आया ?

'**वह त्रस की पर्याय कठिनता से प्राप्त होती है। (वहाँ भी) लट...**' अभी तो कहते हैं कि एकेन्द्रिय वनस्पति, पृथ्वी, जल में से निकलकर लटपना प्राप्त करना, वह चिन्तामणिरत्न प्राप्त करने जैसा है। आहा...हा...! जैसे चिन्तामणिरत्न कठिन, वैसे ही एकेन्द्रिय में से लट होना कठिन (है।) लट... लट..., दो इन्द्रिय ! वह कण्डे में होती है न ? एक शरीर और मुँह (ऐसी) दो (इन्द्रियाँ) होती है। समझ में आया ? एकेन्द्रिय अर्थात् एक शरीरस्पर्श ही होता है। इसे (दो इन्द्रियवाले को) शरीर और मुँह दो होते हैं। लट... '**चींटी...**' देखो ! क्रम लिया है, हाँ ! चींटी

अर्थात् त्रिइन्द्रिय - ऐसा क्रम लिया है। चीटीं को तीन इन्द्रियाँ होती है स्पर्श, जीभ और नाक। वह भी एकेन्द्रियमें से दोइन्द्रिय और दोइन्द्रिय में से तीन इन्द्रिय (प्राप्त होना), वह चिन्तामणि रत्न की तरह दुर्लभता से पाता है। यहाँ कहते हैं, हीरा थोड़ा सा मिले, वहाँ ऐसा-ऐसा हो जाता है। वह तो कहते है, उस चिन्तामणिरत्न की तरह यह लट (पना) पाना कठिन है - ऐसा कहते हैं। तेरे हीरा की बात नहीं है। समझ में आया ? वहाँ से निकलकर भँवरा (हुआ), वह चौइन्द्रिय है। एक-एक इन्द्रिय बढ़ी है। भ्रमर को चार इन्द्रियाँ होती है, कान नहीं होता, उसे आँख होती है। स्पर्श, जीभ, नाक, आँख (ऐसी) चार (इन्द्रिया होती है।)

'**(आदि) इत्यादि शरीर...**' इसका यह तो एक-एक नमूने का नाम दिया है, हाँ ! ऐसे दो इन्द्रिय के जीव, त्रिइन्द्रिय के जीव, चौइन्द्रिय के जीव - यह एकेन्द्रिय में से होना महा चिन्तामणिरत्न की तरह कठिन है। समझ में आया ? '**(धर-धर) बारम्बार धारण करके...**' देखो ! फिर एक नहीं, उसमें भी बहुत काल रहता है, उसकी कालस्थिति बड़ी है। त्रस में, एक त्रस की स्थिति में दो हजार सागर। दो हजार सागरोपम त्रस में रहता है। त्रस अर्थात् सब होकर, हाँ ! दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय सब ! दो हजार सागरोपम। इसमें कितने वर्ष होते हैं ? असंख्यात अरब वर्ष। दो हजार सागरोपम। एक सागरोपम में दश क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम, एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष ऐसे-ऐसे दो हजार सागरोपम त्रस में रहता है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय सब होकर, हों ! समझ में आया ?

'**बारम्बार धारण करके (भरा)...**' संयोग से बात करते हैं। समझ में आया ? वैसे तो निगोद से निकलकर... शास्त्र में आता है न ? भरत के बत्रीस हजार पुत्र.. लिखा है न इसमें ? एकदम मनुष्य (हुए) यह तो कोई होता है। यह तो सीधे मनुष्य भी होता है। कोई सीधे मनवाला भी होता है, कोई मनहरित पंचेन्द्रिय होता है, सीधा होता है, इसमें कुछ (नहीं)। यह तो एक उसे समझाने की शैली शास्त्र में होवे - ऐसे बात रखते हैं न ! दस हजार, वे बत्रीस हजार, कहो ! समझ में आया ? उत्कृष्ट बात में दुःख की शैली और क्रम बताना होवे, उसमें (दुःख की) उत्कृष्ट बात करते हैं। ऐसा होता है न ? यह बतलाना हो न ? अन्य बात यहाँ किसलिए बतायें ?

कहते है कि, धर-धर मर्यो। शरीर धर धर कर मरा। एक शरीर धारण किया, वहाँ दूसरा,

दूसरा वहाँ तीसरा... आहा...हा...! वस्त्र पलटाना पड़े वह इसे कठिन पड़ता है। यह कहते हैं शरीर धर-धर कर अनन्तबार मरा। भगवान आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु, अपने को भूलकर और पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का सेवन करके ऐसे शरीर को धारण किया। कौन वहाँ मान और कहाँ अपमान ? इसे कोई मानता ही नहीं था कि यह जीव है। एकेन्द्रिय निगोद के जीव को कौन मानता है ? उसे भी कहाँ खबर है (कि) हम जीव हैं या नहीं ? यह त्रस हुआ तब फिर ज़रा गति करने लगा। ऐसे वीर्य की गति, वह तो शरीर की गति। कर्मचेतना... कर्मचेतना। एकेन्द्रिय में तो मुख्यरूप से अकेली कर्मफलचेतना ही है। अकेले पाप के फल ही भोगता है। अकेले दुःख को भोगता है। त्रस में मुख्यरूप से कर्मचेतना गिनी गयी है, वरना फल तो भोगता है। यहाँ भोगने की बात ली है। यहाँ तो कर्मफलचेतना... भोगने की दुःख की व्याख्या लेना है यहाँ तो।

'**(मर्यो) मरण को प्राप्त हुआ...**' कौन मरण को प्राप्त हुआ ? कि जीव, मरण को प्राप्त नहीं करता। शरीर धारण कर-करके मरा - ऐसा कहा है न ? शरीर का संयोग हुआ, वह शरीर छूटा; शरीर प्राप्त हुआ, वह शरीर छूटा - इसका नाम मरा ऐसा (कहा जाता है।) '**(और) (बहुपीर) (सही) बहुत पीड़ा सहन की।**' बहुत पीड़ा ! लट, चींटी, मकोडे... आहा...हा...! इतनी लम्बी लट होती है, उस पर एक पचास मण का बड़ा घन पड़ा हो, आधी लट दब गयी हो और आधी-दूर रह गयी हो। है ? मण दो मण लोहा होता है या नहीं ? लम्बी लट नहीं होती ? ऐसी लम्बी हो, उस पर पाँच मण का पत्थर पड़ा... आधी यहाँ आधी अन्दर ! संयोग से बात चलती है, हाँ ! उसे पीड़ा तो विकार और एकत्व की है। आहा...हा...! यह शरीर नीचे से निकले नहीं, यहाँ से मरे नहीं, वह ऐसे तड़फन... तड़फन... तड़फन... तड़फन कर मरता है। यह दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चोइन्द्रिय की बात है, हों !

यह मक्खियाँ, देखो न ! मधुमक्खी। सिर पर ऐसी इकट्ठी की हो, नीचे पकड़नेवाला अग्नि का धुँआ करता है, बड़ी अग्नि ! धड़... धड़... धड़... अग्नि करता है। एकदम भाग जाती है। शहद लेने के लिए (ऐसा) करते हैं। ऐसे दुःख, पीड़ा, बहुत पीड़ा सहन की। कहते है - आहा...हा...! देखो न ! इस गुड़ के उसमें - राब में गुड़के राब में ऐसी मक्खियाँ पड़ते ही एकदम मर जाती है। हैं ? चीटिंयाँ, ऐसी चीटियाँ निकली हो न... तमतमाती अग्नि में (पड़े) तमतमाती कड़ाई होवे न,

कड़ाई नीचे ? इतने अधिक तेल में वहाँ कौन देखने जाता है ? ऐसे चट... चट... (सुलग जाती है।) दीमक... दीमक...! ऐसे सुँवाली दीमक होती है, बाहर निकलती है और तेज धूप लगे तो खत्म हो जाती है, धानी तरह सट... सट... हो जाती है। ऐसी '**(बहु पीर सही)...**' यह संक्षिप्त शब्द में (कहते हैं)। तूने बहुत पीडा सहन की है, बापू ! दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चौ इन्द्रिय में कही सुख की गन्ध नहीं है।

'**भावार्थ :- जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है, उसी प्रकार...**' यह तो कठिनता से प्राप्त होता है - ऐसा (कहा है, इसमें) इतनी दुर्लभता बतलाना है, हों ! वह दुर्लभ हे न ? यह बोधि दुर्लभ है। '**इस जीव ने त्रसपर्याय भी बड़ी कठिनता से प्राप्त की है।**' निगोद से निकलकर प्रत्येक और उसमें से निकलकर त्रस बहुत महापुण्य किया होवे, तब बाहर आया है।

'**उग्र त्रसपर्याय मैं भी लट (इल्ली) आदि दो इन्द्रिय जीव, चींटी आदि तीन इन्द्रिय जीव; और भँवरा आदि चार इन्द्रिय जीव के शरीर धारण कर करके मरा और अनेक दुःख सहन किये।**' आहा...हा...! किसे पुकार करने जाए ? वहाँ फरियाद चलती है कि यह मुझे व्यर्थ में मार देता है ? हम '**ऐसे ही**' फिरते हैं, चीटीं, मकोड़ा पानी में पड़ते है, अग्नि में (जलते हैं); कहो, समझ में आता है ? चीटीं, चीटी को पंख आवे और पानी में '**गिरे एकदम गिरते... गिरते...**' बड़े पंख लम्बे हों तो कहाँ पड़ता उसे पता नहीं होता, वह तो पड़ते पड़ते एसे अग्नि होवे तो वहाँ पड़ जाए। पंखो का मार हो जाता है न, पंखो का ? यह नहीं होता। चातुर्मास में वे जीव (होवे है न) ? एक यहाँ निकलते थे, कोने में एक बार, तुम थे या नहीं ? तुम थे, उस कौने में पता है न ? बहुत वर्ष पहले, एक साथ निकलते थे; अन्दर से नये-नये फट-फट (निकलते)। बाहर से कौए और कबूतर तैयार हो, एकदम चोंच मारे तो वह बीच का कलेवर खा जाए और वह पंख टूट जाता है; परन्तु उसे न ? यह कहते हैं - अनन्त बार तेरा हुआ है - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया ? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, भँवरा, मक्खी, पतंगा दब जाते है, देखो न ! रास्ते में ऐसे बड़े-बड़े पतंगे होवे हैं, इतने बड़े ! बस चलती

है बस, बहुत बार रास्ते में चिपके हुए दिखते हैं। इतने इतने बड़े, हाँ ! पीले चिपके हुए।

अब फिर तिर्यंचगति में असंज्ञी और संज्ञी का क्रम लिया है। तिर्यंचगति में भी मनरहित पंचेन्द्रियजीव होते हैं और मनवाले होते है। ऐसे भी तूने अनन्त भव किये हैं। वह शास्त्र में इसमें स्वामी कार्तिकेय में यह क्रम लिया है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यही कहते हैं कि तू अब काल मिला है, इसलिए अवसर पहचान ले, इसके लिए तो यह बात करते है। कठिन ! बापू ! मनुष्यपना कठिन, उसमें धर्म प्राप्त करना, सुनना कठिन। आहा...हा...! देखो न ! यह बाहर की पदवी के लिए धमाधम चलती होगी या नहीं ? है ? वे कहें मैं पदवी में आऊँ, वह कहे मैं आऊँ। अरे...! परन्तु बापू ! वह तेरी पदवी कहाँ है ? भाई ! क्या मिला और क्या पाना है - वह पूरा रह जाता है। ऐसा महा किठिनता से भव मिला।

तिर्यंचगतिमें असंज्ञी तथा संज्ञीके दुःख

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो;
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।६।।

अन्वयार्थ :- ढयह जीवज (कबहूँ) कभी (पंचेन्द्रिय) पंचेन्द्रिय (पशु) तिर्यंच (भयो) हुआ [तो] (मन बिन) मनके बिना (निपट) अत्यन्त (अज्ञानी) मूर्ख (थयो) हुआ [और] (सैनी) संज्ञी [भी] (ह्वै) हुआ [तो] (सिंहादिक) सिंह आदि (क्रूर) क्रूर जीव (ह्वै) होकर (निबल) अपने से निर्बल (भूर) अनेक (पशु) तिर्यंच (हति) मार-मारकर (खाये) खाये।

भावार्थ :- यह जीव कभी पंचेन्द्रिय असंज्ञी पशु भी हुआ तो मनरहित होनेसे अत्यन्त अज्ञानी रहा; औ७ कभी संज्ञी हुआ तो सिंह आदि क्रूर-निर्दय होकर अनेक निर्बल जीवोंको मार-मारकर खाया तथा घोर अज्ञानी हुआ।।६।।

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो;
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर।।६।।

यह सब शैली ली है। '**यह जीव कभी पंचेन्द्रिय...**' विकलेन्द्रिय में से निकलता है न ? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय में से निकला। यह तो क्रम लिया है। यह तो कोई सीधा पंचेन्द्रिय भी होता है, उसका कुछ नहीं। समझ में आया ? किसी समय... इसलिए कहा न ? '**कभी पंचेन्द्रि...**' हुआ और पाँच इन्द्रियाँ मिली। कान भी मिले, उस भँवरे तक चार इन्द्रियाँ थी, फिर कान मिले; पाँच इन्द्रियाँ मिली, परन्तु '**(मन बिन) मन के बिना (निपट अज्ञानी)...**' मन नहीं मिला, इसलिए अत्यन्त मूर्ख हुआ... लो ! मन नहीं मिलता, वहाँ शिक्षा ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं मिलती। मूर्ख... मूर्ख.. मूर्ख... हुआ। मन के बिना निपट अज्ञानी रहा। चाहे जो मन के बिना का बड़ा प्राणी हो, उसे शिक्षा दो तो क्या ग्रहण करने की शक्ति है ? इसलिए कहते हैं, मन बिना निपट (अज्ञानी रहा।)

बड़ा भरफोड़ा (जीवजन्तु) होता है, हों ! कितने ही पंचेन्द्रिय सर्प मनरहित होते हैं, कितने ही, हों ! बड़े-बड़े हाथी हों ऐसे हों ! मनरहित साधारण दिखाव; मनरहित असंज्ञी मछलियाँ (होती है)। यह तो बहुत संज्ञी है, परन्तु मनरहित सीधे अध्धर मछलियाँ होती है; मन नहीं होता, असंज्ञी। भान नही होता। मिली पाँच इन्द्रियाँ, मिली मूर्खता और अज्ञानदशा। आहा...! उसमें से कहते हैं कि यह मनुष्यपना और उसमें दुर्लभ (भव में) सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, वह कठिन है। पाया तो अब चूकना मत - ऐसा अब आगे कहेंगे। है ? आता है न पीछे ?

'**(सैनी) संज्ञी (भी) हुआ...**' वह मन रहित था, उसमें से मरकर फिर पंचेन्द्रिय मनवाला हुआ। मन प्राप्त हुआ। '**सिंह इत्यादि क्रूर जीव होकर...**' देखो ! क्रूर सिंह हुआ। हिरण को तो एसे एकदम पकड़ता है। सिंह को ज़रा भी दया होगी ? क्रूर ऐसा बड़ा मुँह मारकर चीरकर...

भगवान को जीव भी देखो न ! 'महावीर' भगवान का जीव आता है न दशवें भव में ? हिरण वह ऐसी तराप (छलाँग) मारता है। ऐसे मारता है। आहा...हा...! उसमें फिर मुनि निकले और (बोध देते हैं।) अरे...! जीव अरे...! तुम यह क्या करते हो ? तुम तो दसवें भव में तीर्थंकर

होनेवाले हो। हमने सर्वज्ञदेव केवली से सुना है। यह क्या करते हो ? पंचेन्द्रिय को पंचेन्द्रिय मारे ? यह क्या गजब है ? (सिंह) एसा रूक जाता है। देखो ! अभी तो दसवें भव में तीर्थंकर होनेवाला है। वह हिरण को मारता है। ऐसे भव भान बिना क्रूर होकर किये हैं। सिंह क्रूर (होकर) ऐसा बटका खाता है। एक और भेंड उस तरफ हरा खड़ मुँह से खाता हो, पीछे सिंह पूंठे खाता है। ऐसा उसका स्वभाव होता है।

यह बड़े राजा जाते हे न ? क्या करने ? शिकार ! तख्ता बाँधे, वहाँ भेड़ को बाँधे, पाड़े को बाँधे और सिंह आवे। वह घास डाला हो, उसे भेड़ खाता हो और पीछे से सिंह काटे। एक बनिये को देखने ले गये। (एक सेठ) थे, दरबार ले गये। सेठ ! चलो तो सही। वह जाने कि ना कहा करना। वहाँ अन्दर उस तख्ते में से देखा। बाहर में वह पाड़ा बँधा और दीपड़ा, सिंह आवे उसे मारे। यह कहे - भाई ! यह हमसे नहीं देखा जाता। (एक) सेठ था (वह कहे) 'हमारे ऐसा नहीं होता, यह हमारा काम नहीं।' (तब दरबार कहता है) अरे ! बनिया डरपोक इतना नहीं देख सकता ? आहा...हा...! बापा ! अभी क्या होता होगा, वह भगवान जाने। है ? अभी नरक में उसकी चिल्लाहट और उसकी पीड़ा, वह भगवान जाने और वह भोगे... क्या होगा अब ? भविष्य में होना होगा वह होगा। गोलन गाडा भरे। इस हाथ करके इस हाथ भोगेंगे। हम क्षत्रिय कहलाते हैं। बनिये की तरह डरपोक नहीं है कि हम डर जाएँगे। बहुत अच्छी बात है, भाई ! मरकर जाएगा वहाँ डरपोक से भी हल्का होकर मरकर दुःखी होगा। उसकी एक समय की पीड़ा एक सैकेण्ड की उसकी पीड़ा वह जाने। इतना वर्णन भगवान करते हैं। और अभी वहाँ नीचे पड़ा है। बड़े-बड़े राजा मरकर नरक में पड़े हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं '**सिंह इत्यादि क्रूर जीव होकर अपने से निर्बल...**' प्राणी को मारता है। आहा...! अभी एक बार नहीं आया था ? सिंह और अजगर की लड़ाई। अजगर तो बड़ा जबरदस्त। सिंह को लिया पाशमें सिंह को अजगर में ऐसा पाश लिया, बीच में पेट में से। वह छूटने के लिए महेनत करे... महेनत करे... चौबीस घण्टे ऐसा पाश में लिया कि सिंह का खून निकाल दिया, मर गया। मरा तो निकाल दिया। अजगर... अजगर बड़ा जबरदस्त था, सिंह को मार दिया। यहाँ कहेंगे न ? सबलवान ऐसे निर्बल को मार देता है। अजगर होता है न ? बड़े-बड़े अजगर। उनकी आँखो में ऐसा होता है कि ऐसा बड़ा घोड़ा चला आ रहा हो, वह खिंच जाता है। अजगर में ऐसा होता है। बड़ा अजगर किस प्रकार चलता है ? दौड़कर कहाँ जाए ? कुदरत ने उसकी आँखे ऐसी की है कि ऐसा करे वहाँ छोटे छोटे घोड़े उसके पेट में खिंच आते हैं, मुँङ में आ जाते हैं और फिर खाता है। ओ..हो...हो...! ऐसा अनन्तबार संज्ञी पंचेन्द्रिय क्रूर हुआ तो निर्बलों को मारकर, चीरकर खाया। यहाँ तो संयोग से व्याख्या करना है न ? खा सकता है या नहीं, यह यहाँ सिद्ध नहीं करना है, हाँ फिर ! आहा...हा...!

'**निर्बल अनेक तिर्यंच मार-मारकर खाये।**' पाठ क्या है ? देखो ! हे ? मार दिया। लो ! अभि सिद्ध क्या करना है ? बात समझना चाहिए न ? हैं ? ऐसे भाव किये तब वह मारा गया, इसमें दुःख हुआ, - ऐसे कहते हैं। परन्तु भाषा क्या कहें ? देखो ! यह मार दिया, यह आया था नहीं इसमें ? अरे...! भगवान ! '**सैनी ह्वै क्रूर, निर्बल पशु हति...**' एक शब्द '**खाये भूर।**' दूसरा शब्द बहुत मार मारकर खाये। लो ! खा सकता है या नहीं ? यहाँ तो संयोग से उसे दुःख की व्याख्या बतलाना है। क्रूर सिंह हुअ। इसलिए मारकर खाये। मुँह पकड़े, पेट (पकड़े) बड़ी भेंस होती है न ? सिंह उसकी आल पकड़ता है आल खाता है। गिरे और ऐसे नीचे डाले।

(एक भाई) कहते थे न ! एक बार दो सिंह आये उनके गाँव में। भेंस को पकड़ी, बड़ी भेंस, उसका आल खाते थे। दो सिंह बैठे थे। स्वयं देखने गये, क्या करते हैं ? एक सिंह को देखा, ऐसा देखा वहाँ दूसरा। सवेरा हुआ वहाँ दोनो चले गये। भेंस का आल खा गये थे। तड़फ तड़फ कर मर गयी। आल ही खाये, अन्दर का माल। आहा...हा...! पूरा शरीर पड़ा रहा। क्रूरता की। समझ में आया ? कहते है - '**अनेक तिर्यंच मार-मारकर खाये।**' फिर एक दो नहीं, ऐसा

कहते हैं। बहुत चाहिए या नहीं उसे ? सिंह आदि को तो बहुत चाहिए, अजगर को कितने ही पशु आदि चाहिए।

'**भावार्थ :- यह जीव कभी पंचेन्द्रिय असंज्ञी पशु भी हुआ तो मन रहित होने से...**' देखो ! ऐसी भी एक दशा होती है। मनरहित पंचेन्द्रिय भी होता है। पंचेन्द्रिय होवे और मनुष्य हो ऐसा कुछ नहीं। '**अत्यन्त अज्ञानी रहा...**' 'छहढाला' में सब बातें बहुत अच्छी की है। पहली दुर्लभ भावना से वर्णन करके वस्तु का वर्णन करेंगे। '**...और कभी संज्ञी हुआ...**' मनवाला हुआ, सिंह इत्यादि। सिंह, हाथी, घोड़ा, बाघ, नाग ये सब क्रूर हुए, क्रूर निर्दय हुए। समुद्र में निर्दय मगर-मच्छ होते हैं; बड़े मगरमच्छ छोटे को खाते हैं। क्या कहते हैं ? मच्छ निगल-निगल नहीं कहते ? है ? मच्छ निगल-निगल कहते हैं न ? बड़ा मच्छ ही छोटे को खाता है पूरा। मेंठक होवे, उसने मुँह में मच्छर को पकड़ा हो, उस मेंठक को छोटा सर्प पकड़ता है, छोटे को दूसरा बड़ा पकड़ता है। ऐसा का ऐसा चला करता है। मेंढक ने एक मक्खी को मारने, खाने के लिए मुँह में पकड़ी हो, उस को दूसरे बड़े (सर्पने) पकड़ा हो; उसे फिर उससे बड़े ने पकड़ा हो। ऐसी पीड़ा और ऐसे भव जीव ने अनन्तबार किये हैं। जैसे बारोट इसकी पूर्व की कथा कहता है; ऐसे भगवान तेरी कथा कहते हैं, ले ! मुनि ने जैसी कथा कही, वैसी कथा कहूँगा, भाई ! आहा...हा...!

'**सिंह आदि क्रूर तिर्यंच होकर, अपने से निर्बल...**' जो अपने से हलके प्राणी निर्बल है (ऐसे) '**अनेक जीवों को मारकर...**' लो ! मारकर, अर्थात् ऐसे मार डालने के भाव हुए और उसकी क्रिया हुई। शब्द क्या बोले ? व्यवहार से बात, सब व्यवहार की ही होती है अधिक।

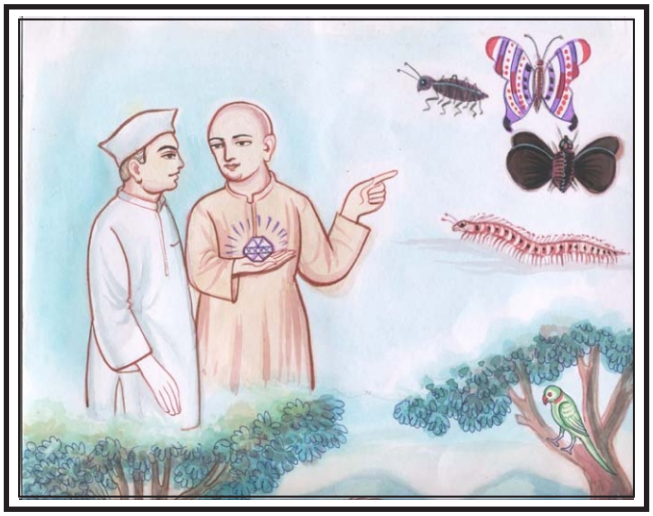

समझाना होवे तो ऐसा कहते हैं कि नहीं, नहीं; इसने मार नहीं दिया, इसने भाव किया था ऐसा कहेंगे वहाँ ? यहाँ बताना क्या है ? जन्म-मरण किया, इसलिए दुःखी हुआ - ऐसा कहा। लो ! शरीर के संयोग-वियोग से ऐसी व्याख्या की। व्याख्या करे तब उन्हें समझाना क्या है ?

'**घोर अज्ञानी हुआ।**' मारकर खाया, माँस खाया। समझ में आया ? सिंह कितन ही ऐसे क्रूर होते हैं। थोड़ा लगा होवे तो कपट करे। जहाँ लेने आवे, वहाँ उसे ही मारे, पकड़े, खा जाए। यहाँ हुआ था न ? 'गोंडल' का नहीं ? फटाया का दीपडा था बड़ा, ऐसा पड़ा था। वहाँ एक व्यक्ति गया तो (उसे खा गया।) हाय... हाय... साथ रहनेवाला मनुष्य क्या करे ? क्रूरता... क्रूरता... क्रूरता...! क्रूर, उसका मुँह ही क्रूर होता है। दीपडा ऐ..सा (होता है।) यह आयेगा। इसमें यह बात रह ही गई, हो ! है ? चित्र में रह गयी। एक बात में कहाँ सब होती है ? चित्र है या नहीं इसमें ? है ? देखो !

क्रूर त्रस

उसमें कहा है न ? वह एकेन्द्रिय निगोद की व्याख्या की। लो ! फिर वह जन्मा, मरण को प्राप्त हुआ ! देखो ! पृथ्वी, जल का दृष्टान्त दिया है, हाँ ! मनुष्य रचना है, फिर यह बताया, देखो ! यह... ऐसा कहते हैं। चिन्तामणि त्रसपर्याय - ऐसा कहकर तितलियाँ और ऐसा दृष्टान्त दिया है। यह बताते है, देखो ! ऐसा पाना दुर्लभ है। ऐसा फोटो इसमें दिया है, हाँ ! है ?

उसमें से सिंह लिया, देखो अब यह। यह सिंह इस हिरण को उल्टा पटककर मारता है, देखो !

ऐसा करके, यहाँ पंछी रखा है, यहाँ एक सर्प रखा है नीचे, ऐसा करके सर्प उपर चढ़कर उसको मारने जाता है और वह मैना मानो सर्प को मारूँ, सर्प मानो उसे मारूँ। समझ में आता है ? ऐसे क्रूर ! अभी तो यहाँ तक आया है न ? '**सिंहादिक सैनी ह्वै क्रू, निबल पशु हति खाये भूर।**' भूर अर्थात् बारम्बार, एकाकार। सर्प को मारे ऐसे पाप अनन्तबार किये और अनन्त दुःख सहन किये, परन्तु कही इसे अन्त नहीं आया।

६ गाथा कही। लो ! सातवीं गाथा में (आयेगा)। उसमें दृष्टान्त ठीक दिये हैं, हाँ ! चित्ता का किया है, हाँ ! यह श्वास का दृष्टान्त दिया है। यह श्वास... श्वास.. एक श्वास में (अठारह बार)। ठीक ! यह निगोद, ठीक !

❁

जो शक्तिरूप मोक्ष है, वह तो त्रिकाल स्वभावभाव है । वह मोक्ष करना है या मोक्ष हुआ है, ऐसा नहीं , परन्तु इस शक्तिरुप मोक्षका आश्रय लेकर जो पर्याय होती है , वह व्यक्तिरूप मोक्ष है । वह व्यक्तिरूप मोक्ष - मोक्षमार्गकी प्रर्यायसे प्राप्त होता है, परन्तु द्रव्यसे प्राप्त नहीं होता । पर्याय ही मोक्ष प्रकट करती है, त्रिकाली ध्रुवद्रव्य मोक्षको प्रकट नहीं करता, न ही जड़कर्म मोक्षको प्रकट करता है। इसे भी सच में तो शुद्धउपादान-कारणभूत होनेसे मोक्षका कारण कहा है, परन्तु यह भी एक अपेक्षासे ही है । वास्तवमें तो मोक्षमार्गका व्यय होने पर ही मोक्षकी पर्याय होती है । (**परमागमसार - ११७**)